तिथि–10 जुलाई 2021
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२२
युगाब्द-५१२२, अंक-१४०, वर्ष-१४
आषाढ़ विक्रमी २०७८ (जुलाई 2021)
मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

ऋषि दयानन्द

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

–यजुर्वेद अध्याय ४०। मन्त्र ८

व्याख्यान–(सः पर्यगात्) वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है। (शुक्रम्) सब जगत् का करनेवाला वही है। (अकायम्) और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता। वह अखण्ड और अनन्त निर्विकार होने से देह धारण कभी नहीं करता। उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है। इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता। (अव्रणम्) वह अखण्डैकरस, अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है। इससे अंशांशिभाव भी उसमें नहीं है। क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता। (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता। अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर को कोई आवरण नहीं हो सकता। (शुद्धम्) वह परमात्मा सदैव निर्मल, अविद्यादि, जन्म-मरण, हर्ष-शोक, क्षुधातृषादि दोषोपाधियों से रहित है। शुद्ध की उपासना करनेवाला शुद्ध ही होता है, और मलिन का उपासक मलिन ही होता है। (अपापविद्धम्) परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता, क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है। (कविः) त्रैकालज्ञ (सर्ववित्), महाविद्वान्, जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले-सकता। (मनीषी) सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी, सबके मन का दमन करनेवाला है। (परिभूः) सब दिशाओं और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सबके ऊपर विराजमान है। (स्वयम्भूः) जिसका आदिकारण माता-पिता उत्पादक कोई नहीं, किन्तु वही सब का आदिकारणादि है। (याथातथ्यतोर्थान् व्यदधाच्छा श्वतीभ्यः समाभ्यः) उस ईश्वर ने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है। उस हमारे दयामय पिता परमे श्वर ने बड़ी कृपा से अविद्यान्धकार का नाशक-वेदविद्यारूप सूर्य प्रकशित किया है। और सबका आदिकारण परमात्मा है, ऐसा अवश्य मानना चाहिए। एवं विद्या-पुस्तक का भी आदिकरण ई श्वर को निश्चित मानना चाहिए। विद्या का उपदेश ई श्वर ने अपनी कृपा से किया है। क्योंकि हम लोगों के लिए [उसने] सब पदार्थों का दान किया है, तो विद्या-दान क्यों न करेगा? सर्वोत्कृष्ट विद्या-पदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया है, तो वेद के विना अन्य कोई पुस्तक संसार में ई श्वरोक्त नहीं है। जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है, वैसे ही वेद-पुस्तक भी है। अन्य कोई पुस्तक ई श्वरकृत, वेद-तुल्य वा अधिक नहीं है। अधिक विचार इस विषय का अधिक वचार इस विषय का 'सत्यार्थ-प्रकाश' मेरे किये ग्रन्थ में देख लेना॥

सम्पादकीय

मेवात और धर्मान्तरण

परमपिता परमात्मा ने यह सृष्टि देवों, आर्यों व मानवों के लिए बनायी है और इन्हीं को सृष्टि के उपयोग एवं उपभोग का अधिकार है, यही देव, आर्य एवं मानव प्रभु के उपरान्त उसके प्रिय पुत्र के नाते इस सृष्टि के स्वामी हैं। किन्तु दुर्भाग्य यह कि जब उपयुक्त अधिकारी किसी भी अधिकार के प्रति आलस्य, प्रमाद, अज्ञान, अन्धविश्वास के वशीभूत होकर अपने जीवन क्षेत्र में परिश्रम-पुरुषार्थ से हीन होकर दैव-दैव वा भाग्य-भाग्य पुकारता है, धर्मनिरपेक्ष संस्कारों के भरोसे बैठ जाता है, तब आसुरी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, प्रबल होती हैं, उठ खड़ी होती हैं और देवों का, आर्यों का, मानवों का विनाश करने के लिए प्राणपण से जुट जाती हैं, जिस परिश्रम-पुरुषार्थ को देव, आर्य, मनुष्यों ने तिरस्कृत किया उसी परिश्रम पुरुषार्थ को अपना साधन बनाकर अन्याय, भ्रष्टाचार, व्यभिचार का नंगा नाच करती हुई दैवी सभ्यता को नष्ट करने चल पड़ती हैं। एक सहस्र वर्ष की पराधीनता के प्राराम्भिक काल से और अब तक यही हो रहा है। वर्तमान का विचार करें तो हमारे चारों ओर जो देव हैं, आर्य हैं, मानव हैं वही त्राहि-त्राहि करते हुवे सुने जाते हैं, देखे जाते हैं और यह जिसे धर्मान्तरण के नाम से सुन रहे हैं, देख रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं, यह वही तो है, देवों का रुदन और असुरों का अट्टहास। स्मरण रहे संसार में धर्म एक ही है कोई दो-तीन नहीं। जिसे हम विशेषण समझकर **'वैदिक धर्म'** भी कहते हैं, इसके विपरीत जो भी है, वह सब **'अधर्म'** है, इसलिए जिसे हम धर्मान्तरण-धर्मान्तरण सुन रहे और कह रहे हैं यह धर्मनाश है, यह धर्मघात है। **धर्मान्तरण तो तब कहलाता जब कोई दूसरा-तीसरा 'धर्म' होता।** जब धर्म एक ही है, दूसरा-तीसरा कोई नहीं, कुछ भी नहीं। धर्मान्तरण हो कैसे सकता है। इसलिए साफ-साफ समझ लीजिए। कि यह जो कुछ चल रहा है- यीशू से लेकर, मोहम्मद तक व मोहम्मद से लेकर अब तक, यह धर्मघात है, यह धर्मनाश है। इसको आप सभी **मजहबी आतंक या रिलीजियस टेररिज्म** कह सकते हैं, किन्तु धर्मान्तरण कदापि नहीं। प्रथम यह सिद्धान्त अपने अन्त: करण में दृढ़ कर लीजिए।

अब बात आती है मेवात की तो आप सभी भली भांति समझ लीजिए। यही मेवात है जिसके पुनरुद्धार करने का बीड़ा हमारे पूर्वज ऋषि दयानन्द के अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द ने उठाया था, जो धर्मघाती धर्मनाशी हो चुके थे उन्हें धर्म सिखाने के लिए पुरुषार्थ किया था। 11 फरवरी 1923 को स्वामी श्रद्धानन्द जी ने **'भारतीय शुद्धि सभा'** की स्थापना की और शुद्धि आन्दोलन आरम्भ कर दिया, स्वामी जी ने कहा था कि- **'जब मुसलमान तब्लीग और तंजीम कर सकते हैं, तब हम अपने ही बिछुड़े भाइयों को वापिस अपने ही धर्म में अर्थात् अपने ही घर में वापिस भी लौटा सकते हैं''** स्वामी जी ने मेवात से सटे हुए मथुरा, आगरा के क्षेत्र के 30 हजार मलकानों को शुद्ध कर 'धर्मपथ' पर लाया था। जिससे भयभीत मजहबी आतंकियों ने स्वामी श्रद्धानन्द जी पर प्राण घातक हमला कर दिया और स्वामी जी का धर्म की वेदी पर 'बलिदान' हो गया।

तब इसी मेवात में 1927 में इलियास **'कांधलवी'** ने **'तब्लीगी जमात'** बना डाली, आज की स्थिति देखें तो- धार्मिक जन तो शिथिल हो गए, सो गए और 'तब्लीगी जमात' ने धर्म को नष्ट करने का काम दिन-रात चलाया हुआ है। आर्यो! आर्याओं! इस धर्मान्तरण अर्थात् धर्मनाश से मात्र धर्म का नाश नहीं होता, अपितु सब कुछ नष्ट हो जाता है, कैसे? सुनिए!

गुजरात के काठियावाड के पनेली गांव में एक प्रेमजी भाई ठक्कर रहते थे, इनके कई पुत्रों में से एक पुत्र था पूंजालाल ठक्कर, इस पूंजालाल ठक्कर ने धर्म के मार्ग पर चलने का धैर्य खो दिया और अपनी पत्नी एवं चार पुत्रों सहित मुसलमान बन गया, इन्हीं चार पुत्रों में से अर्थात् मुसलमान बनने पर दूसरी पीढ़ी में एक गोत्र हत्यारा, कुल कलंकी और देश द्रोही पुत्र हुआ जिसने अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति मिलने से पहले देश ही तोड़ डाला और आतंकवादियों का एक नया देश बनवा डाला, जिसको हम सभी पापिस्तान (पाकिस्तान) के नाम से जानते हैं और उस धर्मद्रोही-देशद्रोही को मुहम्मद अली जिन्ना के नाम से, ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि उसकी आस्था बदल गयी, उसका विश्वास बदल गया, उसने धर्मनाश कर दिया, धर्मघात कर दिया और जो धर्म से घात कर सकता है, जो धर्म का नाश कर सकता है, वह क्या माता? क्या पिता? क्या सगे? क्या सम्बन्धी? क्या राष्ट्र और क्या देश वह सभी का नाश अवश्य कर डालता है, **'जिन्ना' इसका एक उदाहरण है।** संसारभर मे ऐसे सहस्रों उदाहरण हैं जहाँ विचार बदले और देश बदल गए।

अब हमें क्या करना है? हमें मेवात बचाना है, हमें राष्ट्र बचाना है, देश बचाना है, तो कहां से प्रारम्भ करना होगा? वहीं से जहाँ से बिगाड़ हुआ है, सबसे पहले धर्म सिखाना होगा, धर्म पढ़ाना होगा, धर्म को धारण कराना होगा। **'धर्मो रक्षति रक्षित:'** आर्य प्रशिक्षण सत्र में आचार्य द्वारा सुनायी गयी यह आधी पंक्ति छोटी सी है किन्तु इसे चरितार्थ करने निकले ऋषि दयानन्द को भी बलिदान होना पड़ा। आज ऋषि का यह कार्य अर्थात् **'धर्मरक्षा'** का कार्य हमें करना है, उपाय आप सभी जानते हैं- **''आर्य निर्माण'' अर्थात् अन्त:करण में धर्म की स्थापना, जीवन में धर्म की स्थापना।** मेवात से पलायन बन्द, मेवात में धर्म जागरण करना ही होगा।

सर्वप्रथम जो आर्यवंशी हिन्दु हैं, पहले उनके भीतर संगठित होकर, एक साथ मिलकर धर्म स्थापना करनी है, पश्चात् जो धर्म विमुख हो गए, उनके भीतर भी धर्म स्थापना करनी है। यह एक दिन का काम नहीं है, किन्तु लम्बे काल तक इन्तजार भी आत्मघाती सिद्ध होगा। एक-एक आर्य स्वयं को आचार्य जैसी जिम्मेदारी वाला बनाओ! दृढ़ परिश्रमी, सुदृढ़ पुरुषार्थी बनाओ! घर चले, परिवार चले, किन्तु घर-परिवार तभी चलेगा जब क्षेत्र सुरक्षित होगा, देश सुरक्षित होगा। अत: एक-एक को आर्य बनाओ! आप चुप बैठ गए तो विधर्मी भी चुप बैठेगा? क्या कभी बैठा है? नहीं। तो फिर आप चुप कैसे बैठ सकते हो? हमारे आर्य निर्माण में न हिंसा है, न अहित है, न किसी की हानि है, यहाँ लाभ ही लाभ है, इसी आस्था, इसी विश्वास, इसी से सभी का हित है। अत: आर्य निर्माण ही राष्ट्र निर्माण है, यही धर्मबोध है, इसी से धर्म की रक्षा है, इसी से धर्म की स्थापना है, आज सैकड़ों हैं, कुछ दिनों में लाखों और करोड़ों होंगे, अत: तन, मन, धन लगाओ! परिश्रम करो! पुरुषार्थ करो! एक-एक स्त्री-पुरुष को आर्या और आर्य बनाने का प्रयत्न निरन्तर तीव्र करो! तभी हम कह पाएंगे **'यतो धर्मस्ततो जय:'** अर्थात् **'जय आर्य, जय आर्यावर्त्त।'**

फिर कौन करेगा?

-आर्य आनन्द स्वरूप, मुजफ्फरनगर

एक बार एक मुखिया किसी संत के पास गया कि महाराज मेरे परिवार के अमुक की मृत्यु हो गई है और इस कारण मैं बहुत दुःखी हूँ। मैं इस दुख से कैसे छूटूँ, मुझे कैसे शान्ति मिले, कुछ ऐसा उपाय बताइये। संत ने कहा आप इस गांव में से एक ऐसे घर का पता लगाइये जिसमें किसी की मृत्यु न हुई हो। उस दुखी पुरुष ने सोचना शुरु किया कि आस-पास कोई ऐसा घर है कि नहीं, जहाँ कोई मृत्यु न हुई हो, परन्तु शीघ्र ही उसे अनुभव हो गया कि ऐसा तो कोई घर उसके आस-पास, मौहल्ले भर में नहीं है।

एक और प्रश्न है क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को जानते है जो ऋणी न हो? मस्तिष्क पर जोर डालिये! हाँ मेरे बराबर में ही एक सज्जन है, शासकीय विभाग के उच्च पद से सेवानिवृत्त है, अच्छी-खासी पेंशन पाते हैं। परिवार में एक बेटा है जो स्नातकोत्तर विद्यालय में पढ़ाता है। विवाह हो गया है, एक प्यारा सा दो वर्ष का बच्चा भी है। उसकी पत्नी भी महिला-विद्यालय में अध्यापिका है। अपना मकान है किसी वस्तु का अभाव नहीं है। इन्हें ऋणी होने का कोई कारण नहीं समझ आता है। संतोषी हैं, जितनी आय है व्यय उससे कम ही होगा क्योंकि बनावट-दिखावट से दूर रहते हैं, ये क्यों ऋणी होने लगे। ये ही नहीं ऐसे तो मेरे कई जानने पहचाने वाले और भी हैं जो किसी भी तरह के ऋण से दूर हैं। संसार में सभी ऋणी थोड़े ही होते हैं। जिनकी आय अच्छी है और खर्च कम है तथा आकांक्षायें सीमित हैं, वे भला क्यों ऋणी होने लगे। क्या प्रश्न है!

हमने ऊपर-ऊपर सोचा ऋण के विषय में। ऋण धन का ही थोड़े ही होता है, और प्रकार का भी होता है। माता हमें जल देती है अपने दूध, लाड़-प्यार से पालकर बड़ा करती है, ये ऋण नहीं है क्या? पिता पालन-पोषण कर संसार में स्थापित करता है, उसका भी ऋण है। गुरु-अध्यापक ज्ञान का दान देकर हमे ऋणी बनाता है।

इसी प्रकार एक और सबसे बड़ा ऋण दाता है और वह है- समाज। इसमें हम पैदा होते हैं, खान-पान सब कुछ इससे पाते हैं। यह व्यवसाय, नौकरी, सुरक्षा, न्याय सब समाज से ही तो मिलते हैं। विवाह समाज ही में होता है। समाज में अन्तिम संस्कार होता है। समाज का अर्थ जाति विशेष से तात्पर्य नहीं है अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र ही एक समाज के रूप में कार्य करता है। हम जिस राष्ट्र-समाज से इतना सब कुछ पाते हैं क्या हम उनके ऋणी नहीं होगें? होंगे और सबसे बड़े ऋणी राष्ट्र-समाज के ही हैं।

कहते हैं यदि कोई वर्तमान जन्म में किसी का ऋण लेकर बिना उतारे चल बसता है तो उसे अगले जन्म में उसे उतारना होगा। सीधी सी बात है जैसा करना, वैसा भरना। शाश्वत ईश्वरीय नियम है। ऋण उतारना आसान काम नहीं होता है। तो क्या हमें वर्तमान राष्ट्र-समाज का ऋण लेकर मर जाना चाहिये या इसे इसी जन्म में उतारना चाहिये। सभी ऋणी होने को बुरा समझते हैं, कुछ दुष्ट आत्माओं को छोड़कर। इस राष्ट्र-समाज के ऋण को आप एक अन्य प्रकार देखिये। यदि सभी समाज के प्राणी अपने कर्तव्य का पालन न करें, ऋण उतरना कर्तव्य ही है। अपने स्वार्थ में ही समाज से ऋण प्राप्त करते रहें और समाज के ऋण को न लौटायें तो क्या हानि है? मनुष्य सामाजिक प्राणी है समाज में रहकर उसे समाज से जो मिलेगा। समाज के अन्य प्राणियों के कर्तव्य पालन के कारण ही मिलेगा। अनुभव कीजिये यदि सभी प्राणी राष्ट्र समाज के नियमों की उपेक्षा करने लगे तो क्या होगा? राष्ट्र में, समाज में घोर अनैतिकता, छल-कपट, लूट-पाट, व्याभिचार, असुरक्षा, मार-काट फैल जायेंगे, तो क्या ऐसे में किसी भी व्यक्ति का जीवन निर्वहन होना सम्भव है? भले ही वह कितना ही शक्तिशाली हो, राजा ही क्यों न हो। राष्ट्र-समाज स्थापित नियमों और तदनुसार कर्तव्यों के अनुमान से ही राष्ट्र और समाज स्थापित रहते हैं। बड़े-बड़े राजा रावण-कंस वर्तमान में नन्द जैसे शक्तिशाली शासकों का विनाश उनके सामने ही हुआ।

ज्ञान के अभाव में मनुष्य बहाने बनाकर राष्ट्र और समाज के ऋण से उऋण होने से बचना चाहता है। कोई कहेगा राष्ट्र-समाज की सेवा के लिये मेरे पास धन नहीं है, कोई कहेगा समय नहीं है, परिवार का पालन ही इस महंगाई और भाग-दौड़ भरे समय में समस्या बना हुआ है। ठीक है कुछ के पास धन की कमी होगी कुछ के पास परिवार-पालन की समस्या होगी, परन्तु यदि इच्छा शक्ति होने पर कुछ न कुछ इस दिशा में किया ही जा सकता है। शास्त्र कहता है ज्ञान का दान सबसे बड़ा होता है। यदि हम ज्ञान प्राप्त कर समाज को ज्ञान देने का प्रयत्न करें तो हमारा यह प्रयत्न हमें समाजिक ऋण के संकट से उभारने का कार्य करेगा। ज्ञान क्या है और उसके प्राप्त करने का क्या साधन है? इसे कैसे दिया जायेगा? सबसे बड़ी विड़म्बना एक ऐसे समुदाय से है जिस पर न तो धन की इतनी कमी है और न परिवार-पालन का भार है। व्यवसाय परिवार को सम्भाल कर अपने भविष्य का समुचित आर्थिक उपाय किये हुये है अथवा सेवा से निवृत्त पेंशन प्राप्त है, परिवार अपने कार्य में लगा है, कोई आर्थिक भार नहीं है, समय की भी कमी नहीं है। समय काटने के लिये विभिन्न उपाय करते हैं। कहते हैं पैसे की कमी नहीं परन्तु समय नहीं कटता, दुःखी हैं। अभी स्वस्थ हैं, अच्छा खाते-पीते हैं, आयु अधिक नहीं है, जीर्ण अवस्था दूर है, कुछ समाज के लिये करने को कहने पर कहते हैं, अरे अब आयु कहाँ रही अर्थात् हारे हुये बैठे हैं।

समाज के कार्य को व्यवस्थित चलाने के लिए शास्त्र में चार वर्ण बनाये गये थे। पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचारी बनकर विद्याधन, पच्चीस वर्ष आयु तक परिवार-पालन, पच्चीस वर्ष आयु तक सब पचड़ों से निपटकर स्वाध्याय, योगासन-प्राणायाम-ध्यान द्वारा विद्याभ्यास और क्षमता प्राप्त कर इसके बाद संसार के प्रपंचों को छोड़ संन्यासी बन समाज में ज्ञान-प्रकाश फैलाकर सुख-शान्ति के वातावरण को बनाने का प्रयत्न मृत्यु प्रयन्त करें।

पचास वर्ष आयु के बाद साठ वर्ष की आयु, सेवानिवृत्ति बाद भी शास्त्रानुसार जीवन जीने की इच्छा समाप्त प्राय है। संन्यासी जीवन तो दुलर्भ ही दिखाई देता है। यद्यपि भीड़ भरे रंगे वस्त्र सब कहीं हैं। ठीक है पचास-साठ वर्षो की आयु तक मनुष्य परिवार उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो पाता। यह उत्तरदायित्व निभाना आवश्यक है और आवश्यक कार्य करना उत्तम कर्म होता है। परन्तु साठ वर्षीय, परिवार-भार से मुक्त, अनावश्यक परिवार से लिपटे, परिवार की झिड़की खाते हुये भी, जब राष्ट्र-समाज के कार्यों की उपेक्षा करते हैं तो खिन्नता होती है। फिर राष्ट्र-समाज को बचाने के कार्य को कौन करेगा?

आप जिन के लिए पूरी आयु व्यतीत कर रहे हैं अथवा करते हैं, अपने परिवार अपने प्रिय, यदि राष्ट्र-समाज में ज्ञान-व्यवस्था का ह्रास होता है तो ये अपने परिवार-प्रियजन उस अव्यवस्था में सुख से नहीं रह सकते। राष्ट्र-समाज में फैली कुरीतियों, अव्यवस्थाओं और बुराइयों का प्रभाव किसी विशेष स्थान, वर्ग अथवा समूह पर नहीं पड़ता, वह तो सभी को लपेटे में ले लेता है। संसार में इसके अनेकों उदाहरण पहले भी थे और अब भी हैं।

यह उत्तरदायित्व हम सब का है। उठो अपने उत्तरदायित्व का निर्वाहन करो। सोचो हम नहीं करेगें तो आकाश अथवा अन्य ग्रहों से कोई आने वाला नहीं है। **फिर कौन करेगा?**

सहज सरल सांख्य-१४

- आचार्य सतीश, दिल्ली

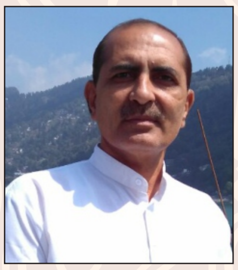

यदि कोई पूर्ण योगी अपनी संकल्प शक्ति से किसी जिज्ञासु के अज्ञान को हटा देता है तो क्या योगी के संकल्प को भी मोक्ष का साधन माना जाना चाहिए?

योगी के संकल्प से जिज्ञासु अल्पकाल के लिए ज्ञानी जैसी अवस्था का अनुभव कर सकता है और इसे आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर करने के लिए भी सहायक हो सकता है। लेकिन निरन्तर अभ्यास, दृढ वैराग्य के द्वारा ही समाधि लाभ के द्वारा जिज्ञासु आत्मसाक्षात्कार कर पाता है।

शुद्ध अन्त:करण योगी भी योगज शक्ति के अत्युन्नत होने के कारण अन्य किसी बाह्य साधन के जिज्ञासु को आत्मसाक्षात्कार की अवस्था का आभास ही करवा सकता है।

यह निश्चित हुआ कि आत्मज्ञान अथवा विवेक ज्ञान मोक्ष साधन है, तो उसके साधन क्या हैं?

विषयों में बुद्धि की वृद्धि की आसक्ति राग है उसे उपघात ध्यान द्वारा अर्थात् बुद्धिवृत्ति को विषयों से हटा करके केवल आत्मा में लगाना क्योंकि राग आत्म ज्ञान में बाधक है।

ध्यान तभी लगता है जब समस्त विषयों से बुद्धिवृत्ति हट कर आत्मा में होती है अर्थात् ध्येय आत्मा होता है। दृढ, धैर्य तथा निरन्तर अभ्यास से कालान्तर में ध्यान अवस्था प्राप्त होती है।

तो फिर वृत्तिनिरोध के लिए किन उपायों का सहारा लिया जाना चाहिए?

धारणा, ध्यान और स्वकर्मों के अनुष्ठान से वृतिनिरोध की सिद्धि होती है। स्वभावत: करणों की प्रवृति विषयों की और होती है। उपरोक्त उपायों के निरन्तर अभ्यास की आवश्कता होती है।

छर्दि और विधारण अथवा रेचक और कुम्भक द्वारा प्राण का निरोध अर्थात् वश में किया जाना प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम के अनन्तर देश विशेष में मन को रोकने का अभ्यास ही धारण है। वृतियों को रोकने के लिए प्रथम धारणा का अभ्यास आवश्यक है।

अभ्यासकाल के अन्तराल में विचलित होना न पड़े, स्थिर होकर सुखपूर्वक जिस मुद्रा में कोई शरीरिक कष्ट व आलस्य न हो वही आसन कहलाता है। वृतिविरोध के लिए आसन का भी महत्व है।

सांख्यकार के अनुसार अपने आश्रय के लिए विहित कर्मों का अनुष्ठान अर्थात् किया जाना स्वकर्म है। व्यक्ति स्वकर्म करते हुये योगाभ्यास कर सकता है। अर्थात् साधारण कर्मों के साथ-साथ प्रत्येक अभ्यासी को यमनियमादि बाह्य अंगों का पालन करते रहना आवश्यक है।

वैराग्य अर्थात् विषयों में वितृष्णा तथा ध्यान आदि अवस्थाओं का निरन्तर अभ्यास करने से समाधि लाभ होकर आत्मसाक्षात्कार हो जाता है।

अज्ञान या अविवेक से बन्ध होता है।

अब मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में कुछ बाधक तत्वों की व्याख्या करते हैं।

विपर्यय अर्थात् मिथ्या ज्ञान के पाँच भेद हैं- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश। मूलत: ये सब विद्या से ही उत्पन्न होते हैं।

अठ्ठाईस प्रकार की अशक्तियाँ अविद्या अर्थात् बुद्धिवृति का मार्ग प्रशस्त करती है। आत्मा के भोग आदि के साधन ग्यारह इन्द्रियाँ किसी न किसी रूप में विघात करती हैं। नौ प्रकार की तुष्टि अर्थात् अर्द्धमार्ग में ही सन्तोष हो जाना कि अध्यात्म सम्बन्धी कार्य हो गया है या स्वत: हो जाएगा, मुझे उसमें क्या करना है? यह आत्मज्ञान का बाधक होता है।

आठ प्रकार की सिद्धियाँ जो अध्यात्म मार्ग में अनुभव हो जाती हैं तथा जिसे साधक लक्ष्य प्राप्ति समझकर इन्हीं में अटक जाता है और आत्मज्ञान का लक्ष्य दूर रह जाता है। सिद्धियाँ जिज्ञासु को प्रोत्साहित कर अध्यात्ममार्ग पर अग्रसर करने की अवस्था में आत्माज्ञान के मार्ग में सहायक भी हो सकती हैं।

जब तक विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि का नाश न हो जाए तब तक तापत्रय (आधिभौतिक, अधिदैविक, आध्यात्मिक दु:ख) विनाशक रूप सिद्धि ऊह शास्त्रोक्त व गुरु निर्देशित विवेचित ज्ञान आदि के द्वारा सम्पन्न नहीं होती।

दैव आदि सृष्टि के भेद हैं- दैवी सृष्टि, मानुषी सृष्टि। आगे ब्रह्मा से लेकर स्थावर (जड़) पर्यन्त समस्त सृष्टि आत्मा के भोगापवर्ग के लिए है, पुरुष को विवेक ज्ञान होने तक बराबर प्रवृत रहती है। वस्तुत: प्रकृति की प्रवृत्ति तो कभी रुद्ध नहीं होती, पर जिस आत्मा को विवेक ज्ञान हो गया है उसके लिये प्रकृति का कोई प्रयोजन नहीं रहता, इसके लिए प्रकृति अप्रवृत ही है।

अब सृष्टि के विभाग बतलाते हैं

सत्व गुण सर्वोच्च है, उसी से शुभकर्म होते हैं, ज्ञान प्राप्त कर उन्नति करते हैं। सत्पुरुष इसी में आते हैं।

तमोगुण निम्नता लाता है, यह जीव को निम्न योनियों में ले जाता है जहाँ केवल पेट भरना और सन्तति बढ़ाना ही स्वभाव है। बहुत से मनुष्य और समस्त प्राणी संसार इसी में आता है।

रजोगुण प्रधान सृष्टि मध्यम श्रेणी की कही जाती है। सामान्य मनुष्य इसी में आते हैं। यहाँ शुभ के साथ अशुभ रहता है और अशुभ में भी शुभ की सम्भावना बनी रहती है।

क्रमश ....

संध्या काल

आषाढ़-मास, वर्षा-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078	श्रावण-मास, वर्षा-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(25 जून 2021 से 24 जुलाई 2021)	(25 जुलाई 2021 से 22 अगस्त 2021)
प्रात: काल: 5 बजकर 15 मिनट से (5.15 A.M.)	प्रात: काल: 5 बजकर 30 मिनट से (5.30 A.M.)
सांय काल: 7 बजकर 15 मिनट से (7.15 P.M.)	सांय काल: 7 बजकर 00 मिनट से (7.00 P.M.)

भारत में पर्यावरणीय चेतना एवं संरक्षण-३

-सोनू आर्य, हरसौला

इसी तरह स्वदेशी भारतीय पंचांग चंद्रकलाधारित होने से पूर्णतः प्राकृतिक है जिसमें अंग्रेजी पंचांग की भांति माह व वर्ष में दिन घटाने-बढ़ाने नहीं पड़ते। जड़ देवता सूर्य को जल अर्पण पर्यावरण से आत्मीयता को ही दर्शाता है। इसी आत्मीयता के परिणामस्वरूप प्राचीन ग्रंथों विशेषकर रामायण पर आधारित रामराज्य से विदित होता है कि प्राचीनकाल में लोग स्वस्थ, बलिष्ठ एवं दीर्घायु थे। युद्ध के अलावा पिता से पूर्व पुत्र की मृत्यु नहीं होती थी।

समयानुसार वर्षों से संपूर्ण भूभाग धन-धान्य से परिपूर्ण था। ऋतुचक्र संतुलित होने से भयंकर रोग अथवा असमय मृत्यु का ग्रास कोई नहीं बनता था अर्थात प्रदूषण का नाम तक न था। **'जीवेम शरदः शतम्।'** अर्थात हम सौ वर्ष तक पुरुषार्थ करते हुए जियें। वैदिक प्रार्थना, महाकाव्यों एवं दो पीढ़ी पूर्व तक के पूर्वजों के प्रत्यक्ष उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारत में सौ-डेढ़ सौ साल तक जीवित रहना सामान्य बात थी। **अरायन** नामक ग्रीक इतिहास लेखक लिखता है कि भारतवर्ष में 140 वर्ष की आय वाले वृद्ध पुरुष बहुत दिखाई देते हैं और सौ वर्ष की आयु वाले तो असंख्य हैं। महाभारत में भीष्म की आयु 170 वर्ष होने के बाद भी वह युवाओं की भांति युद्ध करते थे। स्पष्ट है भारतवासी न केवल दीर्घायु अपितु बलवान भी होते थे, जो साफ स्वच्छ पर्यावरण के बिना संभव नहीं है। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित पर्यावरण संरक्षण से संबंधित भावनाओं का प्रावधान भारतीय संविधान में भी किया गया है। यथा राज्य नीतिनिर्देशक तत्वों के अनुच्छेद-48 में कहा गया है कि राज्य पर्यावरण सुधार एवं संरक्षण की व्यवस्था करेगा तथा वन्य जीवन को सुरक्षा प्रदान करेगा। संविधान के भाग-4क, अनुच्छेद-51 में मूल कर्तव्यों में प्राकृतिक पर्यावरण (वन, झील, नदी तथा जीव) की रक्षा, संवर्धन तथा प्राणीमात्र के प्रति दयाभाव का प्रावधान है। अनुच्छेद-21 में प्रत्येक व्यक्ति को उन गतिविधियों से बचाया जाना चाहिए जो उसके जीवन, स्वास्थ्य व शरीर को हानि पहुंचाती हो। अनुच्छेद-252-253 को महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि वह पर्यावरण को ध्यान में रखकर कानून बनाने हेतु अधिकृत है। वन्य जीव संरक्षण 1972, जल, वायु एवं ध्वनि प्रदूषण रोकथाम क्रमशः 1974, 1981, 2000) जैसे अनेक अधिनियम पारित किए गए हैं। अनेक संस्थान स्थापित किए गए हैं तथा अलग पर्यावरण वन एवं जलवायु मंत्रालय गठित किया गया है। वर्तमान कोरोना महामारी में लॉकडाउन के कारण, **नेचर क्लाइमेट चेंज पत्रिका** में छपे निबंध के अनुसार दुनिया भर में प्रतिदिन होने वाले कार्बन डाई ऑक्साइड उत्सर्जन में 17% की कमी दर्ज की गई है। यूएसए, चीन, भारत तथा यूरोप ने क्रमशः 26 व 27 प्रतिशत तक की कटौती की है जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सर्वाधिक है किंतु यह प्रयास एवं सुपरिणाम स्वाभाविक न होकर विवशतावश है जबकि भारतीय संस्कृति में पर्यावरणीय भावना स्वाभाविक रूप से विद्यमान रही है। भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति में यही अंतर है। जर्नल ऑफ इंडस्ट्रियल इकोलॉजी में प्रकाशित शोध रिपोर्ट के अनुसार अंग्रेजी खानपान पर्यावरण हेतु अधिक हानिकारक है। इसमें पानी की खपत व कार्बन डाई ऑक्साइड उत्सर्जन अधिक होता है। अन्य निष्कर्षानुसार एक औसत भारतीय से कई गुना अधिक ऊर्जा उपयोग एक औसत अमेरिकी करता है। भारत सहित दुनिया भर में मांसाहार भी प्रदूषण का कारण है। दिल्ली यूनिवर्सिटी के पूर्व प्रोफेसर मदन मोहन बजाज जी ने खोज की कि जब प्राणियों की हिंसा की जाती है तो पेन वेव (कष्टप्रद तरंग) निकलती हैं जो न केवल पृथ्वी बल्कि संपूर्ण गैलेक्सी को प्रभावित करती हैं और भूकंप, सुनामी तूफान, चक्रवात आदि का कारण बनती हैं। ऐसा ही स्वर्गीय राजीव दीक्षित जी ने **'मांसाहार से ग्लोबल वार्मिंग'** व्याख्यान में स्पष्ट किया है। उक्त दुष्परिणामों से भिज्ञ भारतीय ऋषियों ने आर्ष ग्रंथों में मांसाहार, भोग वाद का निषेध किया है। प्राकृतिक संसाधनों की पूर्णता, स्वच्छता एवं स्वास्थ्य का आधार पर्यावरण का संतुलित चक्र है। संतुलन तब तक है जब तक प्रकृति को भोगवाद की बजाय मातृरुप में देखा जाए जैसा कि भारतीय संस्कृति में देखा गया। आयुर्वेद में वैद्य वनस्पति तोड़ने से पूर्व प्रार्थना करता है, क्षमा मांगता है। सांयकाल वृक्षों के पत्ते आदि तोड़ने से मना किया जाता है क्योंकि वृक्ष सोते हैं। त्याग पूर्वक उपभोग का आदेश दिया जाता है। प्रकृति के प्रति मातृत्व भावना का वर्णन है। इससे मिलता-जुलता व्यवहारिक दृष्टान्त रामायण में इस प्रकार है। लक्ष्मण जी की चिकित्सार्थ हनुमान जी संजीवनी औषधि लाते हैं। सुषेण वैद्य जी आवश्यकतानुसार लेशमात्र औषधि लेकर हनुमान जी को उसे पुनः हिमालय में स्थापित करने को कहते हैं। उनके अनुसार औषधियाँ संपूर्ण प्राणीमात्र की धरोहर हैं। सुग्रीव द्वारा उत्सुकतावश संजीवनी तोड़ने को भी वैद्यजी रोकते हैं। महाभारत में अंतिम क्षणों में आजन्म ब्रह्मचारी महायोद्धा देवव्रत भीष्म जी प्रार्थना करते हैं, हे ईश्वर! मेरी मातृ भूमि को धूप-छाँव, वर्षा की कभी कमी न रहे। इसके खेत-खलिहान, वृक्ष लहलहाते रहें। इसके जलाशय सदैव स्वच्छ व भरे रहें। यही सम्मान वर्तमान से 2 पीढ़ी पूर्व तक भारतीय नागरिक वृक्ष, अग्नि, जल एवं वायु को देते थे। जल की जितनी जरूरत उतना ही उपयोग। उनके समय तक तालाब-बावड़ी तक का जल स्वच्छ, पीने लायक था जबकि आज उपकरणों से निकला शोधित जल भी अनेक बीमारियों का कारण है। एक दिन मेरे पितामह जिस वृक्ष की छाया में बैठे थे, पर लगा जाला पास खड़े युवक से साफ करवाते वक्त कहा कि वृक्षों में भी जीवन है। काटकर देख लो, सूखने लगेगा। ऊपर वर्णित प्रत्यक्ष प्रमाणों से स्पष्ट है कि वेदों से महाभारत व वर्तमान संविधान पर्यंत पर्यावरण संरक्षण न केवल सैद्धांतिक अपितु व्यवहारिक रूप में भारतीय संस्कृति में मौलिक चिंतन रहा है। विश्व को श्रेष्ठ बनाने का हमारा संकल्प उसी का परिणाम है। उक्त चिंतन के अनुसार पर्यावरण हितैषी नीतियों व कार्यों के लिए हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री को **'चेम्पियन ऑफ द अर्थ'** वैश्विक सम्मान मिल चुका है। भारतीय चिंतन में भोगवाद की बजाय त्यागपूर्ण उपभोग का वर्णन है। यज्ञ से उच्चारित स्वाहा शब्द का भाषा एवं व्याकरणानुसार जो भी अर्थ हो किन्तु स्वाहा के साथ आहुति अर्पण से आहुत (बलिदान) का भाव स्पष्ट होता है, जो त्याग का द्योतक है, भोग का नहीं। भोगवाद ही प्रदूषण का मूल है। पश्चिम के अंधाधुंध भोगवादी दृष्टिकोण से ग्लोबल वार्मिंग व सब तरह के प्रदूषण खतरनाक स्तर पर पहुंच चुके हैं जिससे वन्यजीवों का विलुप्तिकरण, असाध्य रोग, टिड्ढी दल के हमले, अनेक प्राकृतिक आपदाओं से प्राणीमात्र त्राहिमाम् है। अतः यदि पर्यावरण को जीवन योग्य रखना है, तो पुनः आह (भोगवाद) को छोडकर स्वाहा (त्यागपूर्ण उपभोग) की जीवनचर्या अपनानी होगी। पूर्वजों द्वारा प्रतिपादित त्यागपूर्ण संस्कृति व नैतिक परंपराओं का निर्वहन करना होगा। वर्तमान के नैतिकता व अध्यात्म शून्य भोगवाद के आत्मघात से प्राणीमात्र को बचाने का यही एक मार्ग है।

आर्योद्देश्यरत्नमाला

प्रणेता - ऋषि दयानन्द
व्याख्याता - आचार्य परमदेव मीमांसक

१९. सत्संग-जिस करके झूठ से छूट के सत्य की ही प्राप्ति होती है, उसको **'सत्संग'** और जिस करके पापों में जीव फंसते हैं, उस को **कुसंग** कहते हैं।

व्याख्या- ईश्वर, वेद, धर्मात्मा विद्वान् आदि के संग रहने से झूठ से छूटकर सत्य की ही प्राप्ति होती है। ईश्वर की उपासना, वेद का अध्ययन, धर्मात्मा विद्वानों के साथ रहकर उनका अनुकरण करने से असत्य छूटकर सत्य की उपलब्धि होती है और जड़ मूर्तियों की चेतनवत् पूजा, सत्यज्ञान रहित ग्रन्थों का अध्ययन तथा दुष्टों के संग करने से जीव पापों में फंसते हैं, उस को **कुसंग** कहते हैं।

२०. तीर्थ-जितने विद्याभ्यास, सुविचार, ईश्वरोपासना, धर्मानुष्ठान, सत्य का संग, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियतादि उत्तम कर्म हैं, वे सब तीर्थ कहाते हैं क्योंकि इन करके जीव दु:खसागर से तर जा सकते हैं।

व्याख्या-विद्या का पढ़ना, अच्छे विचार, ईश्वर की उपासना, धर्म का अनुष्ठान, सत्संग, बह्मचर्य, जितेन्द्रियता आदि जो उत्तम कर्म हैं, वे सब तीर्थ कहाते हैं। क्योंकि इन को करके मनुष्य दु:खसागर से तर जाते हैं अर्थात् दु:खों से छूट जाते हैं।

२१. स्तुति-जो ईश्वर वा किसी दूसरे पदार्थ के गुणज्ञान, कथन, श्रवण और सत्यभाषण करना है, वह **'स्तुति'** कहाती है।

व्याख्या-**'स्तुति' गुणकीर्तन, श्रवण और ज्ञान होना; इसका फल प्रीति आदि होते हैं।**

(सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश)

ईश्वर के गुणों का ज्ञान होना, उन गुणों को कहना उसको सुनना और वैसा ही सुनाना स्तुति है। जिन मन्त्रों में ईश्वर के गुणों का ज्ञान हो वह स्तुतिपरक मन्त्र कहाता है, उसका उच्चारण करना स्तुति है, दूसरों से उसको सुनना और ग्रहण करके अर्थ विचार करना स्तुति है। सत्यभाषण करना स्तुति है, क्योंकि जो वस्तु जैसी है वैसी ही कहने का नाम सत्यभाषण है। इसी प्रकार अन्य पदार्थ के गुणों का ज्ञान, कथन, श्रवण भी स्तुति है। जैसे राजा, प्रजा एवं परमाणु आदि के गुणों का ज्ञान होना। उसे कहना और गुणों को सुनना **स्तुति** है।

२२. स्तुति का फल-जो गुणज्ञान आदि के करने से गुण वाले पदार्थों में प्रीति होती है, वह **स्तुति का फल** कहाता है।

व्याख्या-किसी भी वस्तु के गुणों के ज्ञान, कथन और श्रवण से उस वस्तु में प्रीति होती है, तभी हम श्रद्धायुक्त हो उसका ग्रहण और उपयोग यथायोग्य कर पाते है।

२३. निन्दा- जो मिथ्याज्ञान, मिथ्याभाषण, झूठ में आग्रहादि क्रिया का नाम निन्दा है कि जिससे गुण छोड़कर उनके स्थान में अवगुण लगाना होता है।

व्याख्या-किसी पदार्थ के विषय में यथार्थ ज्ञान का न होना, स्वार्थ, कुटिलता आदि के कारण वह पदार्थ जैसा नहीं है वैसा मानना तथा कहना निन्दा है। जैसे देवदत्त को अभिमानी मानना, यथार्थ में देवदत्त अभिमानी नहीं है, परन्तु अज्ञानता से उसे अभिमानी माना तो उसके सरलता गुण के स्थान में अभिमान अवगुण लगा दिया। मिथ्याभाषण तो स्पष्ट निन्दा है ही। जैसे देवदत्त के विषय में मिथ्याज्ञान हुआ तथा कह भी दिया कि देवदत्त अभिमानी है तो यह निन्दा ही हुआ । स्पष्ट ज्ञात है कि श्राद्ध मृतक का नहीं होता है, तब भी उसे मानते रहना, करते रहना निन्दा ही है जो श्राद्ध के सत्य अर्थ के स्थान पर झूठे अर्थ को मान कर अभी भी ढोये चले जा रहे हैं।

२४. प्रार्थना- अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर वा किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य का सहाय लेने को **'प्रार्थना'** कहते हैं।

व्याख्या-श्रेष्ठ कर्मों की सिद्धि के लिये सर्वप्रथम अपना पूर्ण पुरुषार्थ कर लें, इसके बाद भी यदि न्यूनता है तो उसकी पूर्णता हेतु परमेश्वर से विज्ञान आदि के लिये याचना करने का नाम, अथवा जो उसे पूर्ण कर सके ऐसे मनुष्य की सहायता प्राप्त करने के लिये याचना करने का नाम **प्रार्थना** है।

२५. प्रार्थना का फल-अभिमान-नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुण ग्रहण में पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीति का होना, **'प्रार्थना का फल'** है।

व्याख्या-कार्य की सिद्धि में जो अभिमान आदि आ जाते हैं, प्रार्थना से उसका नाश हो जाता है क्योंकि कार्य की पूर्णता तो परमेश्वर के साहाय्य से ही हुई है, इस परिज्ञान से आत्मा में नम्रता आ जाती है। गुण-ग्रहण में पुरुषार्थ प्रारम्भ हो जाता है कि अब मैं स्वयं सिद्धि को प्राप्त होऊँ, सहाय न लेना पड़े इसलिये उन गुणों को ग्रहण करूँ जिनसे सिद्धि होती है। साथ ही साथ जिनसे साहाय्य मिला उनसे अत्यन्त प्रीति भी होती है, इत्यादि **प्रार्थना का फल** है।

२६. उपासना-जिस करके ईश्वर ही के आनन्द-स्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है, उसको **उपासना** कहते हैं।

व्याख्या-**जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव हैं वैसे अपने करना , ईश्वर को सर्वव्यापक और अपने को व्याप्य जानके ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है, इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।**

(सत्यार्थप्रकाश-स्वम० प्रकाश)

ईश्वर के सदृश अपने गुण, कर्म, स्वभाव को पवित्र करते हुए अष्टांगयोग के अभ्यास से समाधि में ईश्वर जो आनन्दस्वरूप है उसी में अपने को एक सा करते हुए आनन्द में मग्न होने को उपासना कहते हैं।

२७. निर्गुणोपासना-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, संयोग-वियोग, हल्का, भारी, अविद्या, जन्म, मरण और दु:ख आदि गुणों से रहित परमात्मा को जानकर जो उसकी उपासना करनी है, उसको **'निर्गुणोपासना'** कहते हैं।

व्याख्या-**जो-जो गुण परमेश्वर में नहीं है, उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना निर्गुण स्तुति, दोष छुड़ाने के लिए परमात्मा का सहाय चाहना निर्गुण प्रार्थना, और सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके स्वरूप में निमग्न और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना** निर्गुण उपासना **कहलाती है।**

क्रमश ....

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-२४

- आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर

गृहणियों को पाक कला और गृह विज्ञान के साथ-साथ आयुर्वेद का संक्षिप्त ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। संसार के मनुष्यों की आयु बढ़ने के लिये स्त्री शिक्षा और उसमें भी ललित कलाओं सहित पाक कला एवं आयुर्वेद होना ही चाहिए।

आयु के बाद दूसरा विषय है सावधानी अर्थात् सतर्कता। संसार में वैसे तो सभी को सावधान रहना चाहिए किन्तु जो गृहस्थ हैं उन्हें सोते जागते सावधान रहना इसलिए आवश्यक है क्योंकि समाज, राष्ट्र और संसार का भविष्य उनकी गोद में पलता है। सामाजिक कार्यकर्ता से लेकर राजनेता तक, ब्रह्मचारी से संन्यासी तक सभी उनके घर में आकार ले रहे होते हैं अत: ग्रहस्थों को अवधान सहित होना चाहिए। अवधान सहित अर्थात् आँखें खोले हुये रहने वाला, यहाँ आँखों से तात्पर्य चर्म चक्षुओं से नहीं अपितु ज्ञान चक्षुओं से है, ज्ञान चक्षु किसके खुले होते हैं? जो अपने निकट हो रहे घटनाक्रमों को, बातों को और वैसी ही सभी स्थितियों को देखता और उनको तुलना करके धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करता रहता है। इसी तुलनात्मक अध्यापन का नाम तर्क है। आर्य परम्परा तार्किकों की परम्परा रही है पूरा दर्शन शास्त्र तर्क पर ही टिका है। यहाँ तक की प्रमाण को प्रमाणित होने के लिए तर्क की कसौटी पर कसा जाता है। आज के भारतीय समाज को देखकर अत्यन्त खिन्नता होती है, हा शोक! कि हम कितने तर्कहीन, कितने असावधान हो गये? नास्तिक, बौध, ईसाई, सिख, मुस्लिम आदि अनेकों मत-पन्थों में जाकर भेड़चाल में आर्य सन्तानें फँस गईं इससे अधिक और क्या पतन हो सकता है। मेरा बालक, मेरा युवक, मेरा गृहस्थ, मेरा वानप्रस्थी, मेरा संन्यासी कहीं अधर्म पर तो नहीं जा रहा इसका ज्ञान इसकी सावधानी गृहस्थों को उठानी होगी अन्यथा समाज बिगडेगा अवश्य! इसके लिये अत्यन्त विस्तृत दृष्टि की आवश्यकता है। बालकों के मनोरंजन के कार्टून, बालकों के विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम और उनकी विषयवस्तु जैसे छोटे विषयों से लेकर राष्ट्रीय व वैश्विक घटनाक्रमों, प्रतिघटनाक्रमों को देखते हुवे, उनके प्रभावों को जाँचते हुवे अपनी भूमिका निभानी होगी। सामान्यत: हमारी अवधानता के सम्बन्ध में एक उदाहरण सटीक है- सभी सनातन वंशी हिन्दुओं के घरों में प्राय: आरती गाई जाती है- **'ओम् जय शिव ओंकारा'** बड़े आनन्द से सभी झूम-झूम कर गाते हैं परन्तु विचार नहीं करते। इसी में एक पंक्ति आती है- **ब्रह्म विष्णु सदाशिव जानत अविवेका, प्रणवाक्षर के मध्ये ये तीनों एका।** सामने ब्रह्मा विष्णु शिव आदि की मूर्तियाँ है थाल में दीपक लिए गा रहे हैं। पर यह नहीं विचारते कि क्या गा रहे हैं? क्यों गा रहे हैं और जो गा रहे हैं? उसका अर्थ क्या है? बस धुन अच्छी लगी तो गा लिया, पड़ोसी के घर मे गाया जा रहा था तो गा लिया। किसी ने बिना जाने कह दिया बहुत सुन्दर आरती है तो गा लिया। यह आर्योचित आचरण नहीं है भेड़चाल है। आर्य गृहस्थ भेड़ नहीं हो सकते न तो ऐसा उनका स्वभाव रहना चाहिए और न ही उन्हें ऐसा करने की छूट है उन्हें सावधान, सतर्क अर्थात् तर्क से युक्त रहना ही होगा और सावधानी पूर्वक ही दुराग्रही व कुतर्की होने से भी बचे रहना होगा।

एक और विषय है **'नाम व कीर्ति।'** ये दोनों स्वतन्त्र भी हैं और परस्पर जुड़े हुवे भी हैं। इनमें से नाम के सम्बन्ध में हास्य कवि काका हाथरसी के शब्द विचारणीय हैं-

नाम रूप के भेद पर कभी किया है गौर?
नाम लिया कुछ और तो, शक्ल अक्ल कुछ और।
शक्ल अक्ल कुछ और नैनसुख देखे काने ।
बाबु सुन्दरलाल बनाये ऐंचकताने।
कह काका कविराय, दया जी मारे मच्छर।
विद्याधर को भैंस, बराबर काला अच्छर।।

सामान्यत: होता यह है कि नाम रखा जाते समय बालक अबोध रहता है, किन्तु वह रखा हुआ नाम जीवन भर उसके साथ जुड़ा रहता है। उसकी प्रसिद्धि-अप्रसिद्धि, सम्पत्ति-विपत्ति सब में यह साथ ही जुड़ा रहता है। अत: नाम रखते समय क्या सावधानियाँ रखी जानी चाहिये यह ऋषियों की परम्परा व प्रमाणों के अनुसार ऋषि दयानन्द सरस्वती ने स्वरचित संस्कार विधि में लिखा है सब गृहस्थों को चाहिए कि संस्कार विधि के अनुसार ही नामकरणादि संस्कार करें।

कीर्ति और नाम का जोड़ा इसलिए है कि मनुष्य अन्तत: नाम से ही प्रसिद्ध होता है। यह पृथक इसलिए है क्योंकि बिना विधि के रखे हुए, निरर्थक कठिनाई से उच्चारित होने वाले और संस्कृति विरुद्ध नाम से भी प्रसिद्धि प्राप्त की जा सकती है। प्रसिद्धि की इच्छा मनुष्य में स्वाभाविक है और मनुष्य ही क्या जीव मात्र स्वयं को प्रकाशित करना चाहता है किन्तु यह अधिकार भी गृहस्थों का ही है। ऐसा इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि ब्रह्मचर्य के लिए तो वेद विद्या के अतिरिक्त कोई दूसरा लक्ष्य या उद्देश्य है ही नहीं, वानप्रस्थी को घर परिवार वारे-प्यारे सभी से सम्बन्ध हटाकर केवल और केवल ईश्वर ही से सम्बन्ध जोड़ना व उसी का अभ्यास करना होता है। संन्यासी तो लोकेषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणा त्यागकर ही बनता है। अत: मात्र गृहस्थ ही रहा, वह अपनी प्रसिद्धि के लिए प्रयत्न करता है और उसे करना भी चाहिए।

अब प्रश्न होता है कि वह कैसे प्रसिद्धि प्राप्त करे? कितनी करे? किस कीमत पर करे? इसका एक बड़ा ही सटीक उत्तर पहले से एक लेख में आ चुका है। जब हम वेद के इस मंत्रांश की शेष अगले पृष्ठ पर ..

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	9,10 जुलाई	दिन-शुक्र, शनि	मास-आषाढ़	ऋतु-वर्षा	नक्षत्र-आर्द्रा,पूर्नवसु
पूर्णिमा	24 जुलाई	दिन-शनिवार	मास-आषाढ़	ऋतु-वर्षा	नक्षत्र-उत्तराषाढ़ा
अमावस्या	08 अगस्त	दिन-रविवार	मास-श्रावण	ऋतु-वर्षा	नक्षत्र-पुष्य
पूर्णिमा	22 अगस्त	दिन-रविवार	मास-श्रावण	ऋतु-वर्षा	नक्षत्र-धनिष्ठा

पिछले पृष्ठ का शेष ..... (गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-२४)

बात कर रहे थे- **'यज्ञे प्रतिष्ठिता'** अर्थात् हमारी प्रतिष्ठा यज्ञ में होवे। यज्ञ हमारी सांस्कृतिक पहचान है और बड़ा विस्तृत भी है उसी विस्तृत यज्ञ में जितना हम स्वयं को लगा देवें उतना ही कम है। यह अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेघ पर्यन्त है। हमें इसमें अपनी भूमिका ढूँढनी होगी, जितनी जिस भूमिका का निर्वहन हम कर सकेंगे, वही हमारी प्रतिष्ठा, हमारी कीर्ति का कारण बनेगी। श्रेष्ठ कर्म या शुभ कर्म रूपी यज्ञ में हम जितनी चाहें प्रतिष्ठा पा सकते हैं और इस यज्ञ में छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा सभी कार्य हैं। सभी के लिए इसमें भूमिका निभाने का स्थान है। आवश्यकता अपनी योग्यता सामर्थ्य व अभिरूचि के अनुसार बस कार्य खोजना होगा साथ ही धैर्य व सन्तोष दोनों ही गुणों को छोड़ बिना निरन्तर पुरुषार्थ करना होगा। कुछ कार्यों का परिणाम अत्यन्त शीघ्र व कुछ का पीढ़ियों तक परिश्रम करने के बाद मिलेगा। हमें कीर्ति चाहिए लेकिन धर्म के मूल्य पर नहीं। सत्याचरण अत्यन्त आवश्यक है वही धर्म है। अत: किसी भी प्रयोजन से उसको छोड़ा नहीं जा सकता।

जीवन को चैन से जीने के लिए आवश्यक है कि अपने भीतर छिपे ईर्ष्या-असूया को नियन्त्रित रखकर गुणों में दोष और दोषों में गुण लगाने की आदत अर्थात् निन्दा को छोड़ देना चाहिए। निन्दा का परिणाम यह होता है कि वह निन्दा करने वाले व निन्दा का निशाना बने दोनों की शान्ति का हरण कर लेती है और अशान्त चित्त व्यक्ति पुन: इसकी श्रृंखला में उलझ जाता है। पुन: कई प्रकार के दु:ख प्राप्त करता है। समाज भी धीरे-धीरे निन्दक से दूरी बना लेता है। उसकी सामाजिक, आत्मिक व शारीरिक सभी प्रकार की उन्नति बाधित हो जाती है। अत: ऋषियों का निर्देश मानकर इस निन्दा को छोड़ने में ही भलाई है। यहाँ एक सावधानी रखनी चाहिए कि समीक्षा और निन्दा के अन्तर को अवश्य जानना चाहिए। जब यथातथ्य किसी के गुण दोष देखे जाते और बताये जाते हैं तो वह समीक्षा, समालोचना वा आलोचना करना आदि कहलाता है।

शान्त, प्रसन्न व सुखी रहने के लिये आवश्यक घटकों में एक और घटक है **'वातावरण।'** वैसे तो वातावरण किसी एक घटक से बनने वाली परिस्थिति मात्र नहीं है, यह तो हमारे आस-पास के सभी जड़-चेतनादिकों पर उनके व्यवहार, संस्कार और व्यवस्थाओं पर निर्भर करता है कि वातावरण कैसा होगा। भौतिक, सामजिक व आध्यात्मिक वातावरण के सम्बन्ध में भी बहुत बड़ी-बड़ी लेख और व्याख्यान मालाएँ संसार में चलती ही रहती हैं। हमें तो यहाँ संक्षेप से कुछ एक मुख्य बिन्दु ही देखने हैं जिन्हें गृहस्थों द्वारा धारण किया जा सके। हमारे ऋषि-मुनियों ने परमेश्वरोक्त वेद ज्ञान के प्रकाश में कई ऐसी सावधानियों को गृहस्थ अर्थात् समाज के जीवन में इस भांति स्थापित किया था कि उन प्राचीन प्रकाश स्तम्भों के अवशेष मात्र जो अभी तक यत्र-तत्र दीख पड़ते हैं संसार को प्रकाश दे रहें हैं- जिनमें से हमारे आहार व यज्ञ पर हम संक्षेप से पूर्व लेख में चर्चा कर ही चुके हैं। एक और महत्वपूर्ण प्राचीर की हम यहाँ चर्चा करेंगे जिसके ऊपर अनेक साम्प्रदायों और मत-मतन्तरों ने अपने भवन बना उसे विद्रूप भले ही कर दिया हो किन्तु उसका महत्व आज भी ज्यों का त्यों है और वह है- **इष्टापूर्त कर्म।**

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट- **www.aryanirmatrisabha.com** पर उपलब्ध है। अत: आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा की बेवसाईट पर डाल दी जाती है अत: पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक- www.aryanirmatrisabha.com/हिन्दी में पत्रिका पर जाएं।

25 जून-24 जुलाई 2021 **आषाढ़** ऋतु- वर्षा

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
				मूल/पूर्वाषाढ़ा कृष्ण प्रतिपदा 25 जून	उत्तराषाढ़ा कृष्ण द्वितीया 26 जून	श्रवण कृष्ण तृतीया 27 जून
धनिष्ठा कृष्ण चतुर्थी 28 जून	शतभिषा कृष्ण पंचमी 29 जून	पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण षष्ठी 30 जून	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण सप्तमी 1 जुलाई	रेवती कृष्ण अष्ठमी 2 जुलाई	रेवती कृष्ण नवमी 3 जुलाई	अश्विनी कृष्ण दशमी 4 जुलाई
भरणी कृष्ण एकादशी 5 जुलाई	कृतिका कृष्ण द्वादशी 6 जुलाई	रोहिणी कृष्ण त्रयोदशी 7 जुलाई	मृगशिरा कृष्ण चतुर्दशी 8 जुलाई	आर्द्रा कृष्ण अमावस्या 9 जुलाई	पुनर्वसु कृष्ण अमावस्या 10 जुलाई	पुष्य शुक्ल प्रतिपदा 11 जुलाई
आश्लेषा शुक्ल द्वितीया 12 जुलाई	मघा शुक्ल तृतीया 13 जुलाई	पू॰ फाल्गुनी शुक्ल चतुर्थी 14 जुलाई	उ॰ फाल्गुनी शुक्ल पंचमी 15 जुलाई	हस्त शुक्ल षष्ठी/सप्तमी 16 जुलाई	चित्रा शुक्ल अष्टमी 17 जुलाई	स्वाती शुक्ल नवमी 18 जुलाई
विशाखा शुक्ल दशमी 19 जुलाई	अनुराधा शुक्ल एकादशी 20 जुलाई	ज्येष्ठा शुक्ल द्वादशी 21 जुलाई	मूल शुक्ल त्रयोदशी 22 जुलाई	पूर्वाषाढ़ा शुक्ल चतुर्दशी 23 जुलाई	उत्तराषाढ़ा शुक्ल पूर्णिमा/प्रतिपदा 24 जुलाई	

25 जुलाई- 22 अगस्त 2021 **श्रावण** ऋतु- वर्षा

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
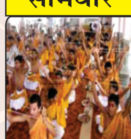	उपाकर्म पर्व 15 अगस्त	15 अगस्त स्वतंत्रता दिवस				श्रवण कृष्ण द्वितीया 25 जुलाई
धनिष्ठा कृष्ण तृतीया 26 जुलाई	शतभिषा कृष्ण चतुर्थी 27 जुलाई	पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण पंचमी 28 जुलाई	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण षष्ठी 29 जुलाई	रेवती कृष्ण सप्तमी 30 जुलाई	अश्विनी कृष्ण अष्टमी 31 जुलाई	भरणी कृष्ण अष्टमी 1 अगस्त
कृतिका कृष्ण नवमी 2 अगस्त	रोहिणी कृष्ण दशमी 3 अगस्त	मृगशिरा कृष्ण एकादशी 4 अगस्त	आर्द्रा कृष्ण द्वादशी 5 अगस्त	आर्द्रा कृष्ण त्रयोदशी 6 अगस्त	पुनर्वसु कृष्ण चतुर्दशी 7 अगस्त	पुष्य शुक्ल अमावस्या 8 अगस्त
आश्लेषा शुक्ल प्रतिपदा 9 अगस्त	मघा शुक्ल द्वितीया 10 अगस्त	पू॰ फाल्गुनी शुक्ल तृतीया 11 अगस्त	उ॰ फाल्गुनी शुक्ल चतुर्थी 12 अगस्त	हस्त शुक्ल पंचमी 13 अगस्त	चित्रा/स्वाती शुक्ल षष्ठी 14 अगस्त	विशाखा शुक्ल सप्तमी 15 अगस्त
अनुराधा शुक्ल अष्टमी/नवमी 16 अगस्त	ज्येष्ठा शुक्ल दशमी 17 अगस्त	मूल शुक्ल एकादशी 18 अगस्त	पूर्वाषाढ़ा शुक्ल द्वादशी 19 अगस्त	उत्तराषाढ़ा शुक्ल त्रयोदशी 20 अगस्त	श्रवण शुक्ल चतुर्दशी 21 अगस्त	धनिष्ठा शुक्ल पूर्णिमा 22 अगस्त

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमत्प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।